लेखक: रीतेश सिंह

वर्ष २०१५

गाय आधारित

शुन्य बजट कृषि

क्या बिना रासायनिक खाद के इस्तेमाल किए खेती में मुनाफा कमाना संभव है ?

कहीं जर्सी गाय का दूध आपको गंभीर रोगों का मरीज तो नहीं बना रहा ?

क्या हमारी देशी गाय की प्रजातियाँ कुछ ही वर्षों में विलुप्त हो जाएँगी ?

मात्र एक देशी गाय से 30 एकड़ जमीन में खेती करना संभव है ?

क्या आपने पंचगव्य, जीवामृत और निमास्त्र के बारे में सुना है ?

क्या गाय के पालन से गाँवों में २४ घंटे मुफ्त बिजली उपलब्ध हो सकती है ?

हम सभी दूध को प्रकृति के सर्वोत्तम आहार के रूप में जानते हैं। कई प्रकार के पोषक तत्वों से युक्त यह अपने-आप में एक सम्पूर्ण आहार है। दूध की आवश्यकता नवजात शिशु से ले कर वृद्धावस्था तक पड़ती है। दूध या दूध से बने उत्पादों के बगैर हमारी दिनचर्या की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती।

मगर कहीं आप जाने-अनजाने में विदेशी जर्सी गाय का हानिकारक दूध तो नहीं पी रहे?

क्या आप जानते हैं कि साधारण सा दिखने वाला यह दूध दो प्रकार का होता है?

जी हाँ ! दूध के भी २ प्रकार होते हैं। इन्हें **ए१ (A1)** और **ए२ (A2)** प्रकार का दूध कहा जाता है। इनमें से ए१ (A1) दूध आपकी सेहत और स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक होता है और ए२ (A2) प्रकार का दूध इंसान के स्वास्थ्य के लिए सुपाच्य, अत्यंत पौष्टिक और अति-लाभदायक होता है।

आइये इस अति-महत्वपूर्ण विषय के बारे में विस्तार से जानते हैं।
विषय में आगे बढ़ने से पहले मैं यह बता देना जरुरी समझता हूँ कि आगे दी गयी जानकारीयाँ पूरी तरह से वैज्ञानिक शोधों और वैज्ञानिक प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित हैं।

पूरे विश्व में दो प्रकार का गौवंश होता है, जिनके वैज्ञानिक नाम हैं :

1. बॉस इंडिकस या ज़ेबू

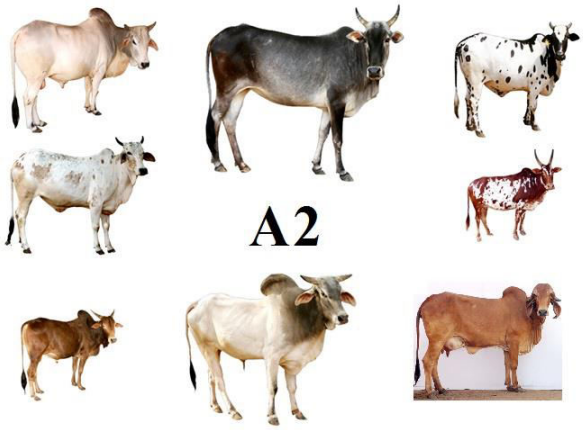

भारतीय देशी नस्ल की सभी गायें, भैसें और बकरियाँ इस श्रेणी में आती हैं।
ये गायें सुपाच्य और पौष्टिक ऐ२ (A2) दूध देती हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है।
सिर्फ इन्हीं गायों के पीठ पर हम्प या कूबड़ होता है।
मजबूत खुर, लम्बी सींग, लम्बे कान, लम्बी पूँछ, लम्बी एवं ढीली चमड़ी और गले पर झूलती झालर होती है।
अपनी चमड़ी को हिला सकने की जबरदस्त कीट-प्रतिरोधक क्षमता इनमें होती है। अपनी लम्बी पूँछ को पूरे ३६० डिग्री (360^0) तक घुमा कर ये अपने आसपास मंडराते कीटों से अपना बचाव करती हैं। इनके स्तन सामान्यत: छोटे होते हैं और ये गायें भारतीय मौसम और वायुमंडल में होने वाले विभिन्न प्रकार के बदलावों को सहने में सक्षम होती हैं एवं इनमें कीट-प्रतिरोधक क्षमता और प्रतिरक्षा प्रणाली (Immune System) भरपूर होती है। भारतीय नस्ल के बैल बहुत अधिक मेहनती और बहुत अधिक गर्म मौसम में भी खेत जोतने या बोझ ढोने में सक्षम होते हैं।
सबसे ख़ास बात है कि भारतीय नस्ल की गायें अपने आस-पास गन्दगी में रहना पसंद नहीं करतीं। इन गायों की समझ इतनी होती है कि ये अपने गोबर या मूत्र से हट कर दूर बैठती हैं।
भारतीय नस्ल की गायों और बैलों के गोबर और मूत्र भी अत्यंत उपयोगी होते हैं और इनके गोबर और गोमूत्र का प्रयोग भारतवर्ष में हजारों वर्षों से होता आया है। इनके गोबर में बहुत अधिक मात्रा में **जैविक द्रव्य, जिंक, मैंगनीज, फ़ॉसफोरस, नाइट्रोजन, कैल्शियम, कॉपर** इत्यादि पाये जाते हैं जिनसे निर्मित जैविक खाद जब खेतों की मिट्टी में जा कर मिलता है तो उस मिट्टी की उपजाऊ उर्वरकता को रासायनिक खादों की तुलना में बहुत

तेजी से और बहुत ज्यादा बढ़ा देता है। आज भारत के कई राज्यों जैसे पंजाब, कर्णाटक, तमिलनाडू, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, बिहार और उत्तर प्रदेश में वहाँ के कई किसान देशी गायों के गोबर और गोमूत्र से निर्मित **पंचगव्य, जीवामृत, जैविक खाद** और **जैविक कीटनाशक** बना कर काफी कम लागत में अपने खेतों की मिट्टी को अति-उपजाऊ बना कर फसलों से लहलहा रहे हैं और अत्यधिक मुनाफा भी कमा रहे हैं।

इन गायों और बैलों के रखरखाव पर ज्यादा खर्च भी नहीं आता और ये गायें कम खा कर अधिक दूध देती हैं। आज गुजरात के कई किसान भारतीय **गीर** नस्ल की गायों को ब्राज़ील, अमरीका, वेनेज़ुएला और मेक्सिको जैसे देशों में बेच कर बहुत अधिक मुनाफा कमा रहे हैं क्योंकि इन देशों ने इन गायों के A2 दूध की महत्ता को समझ लिया है और अपनी विदेशी A1 गायों को हटा कर भारतीय देशी A2 नस्ल की गायों को बड़े पैमाने पर अपनाना शुरू कर दिया है।

2. बॉस टॉरस

A1

सभी प्रकार की विदेशी गायें जैसे **जर्सी**, **होल्सटीन**, **फ्रेसियन, गर्नजी**, **लाल डेनिश, अमरीकी जर्सी** और **करण स्विस गायें** इस श्रेणी में आती हैं।
वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो ये असल में गाय नहीं है। हज़ारों वर्ष पहले इनकी उत्पति यूरोप में पाये जाने वाले एक जंगली जानवर **उरूस (URUS)** से हुई थी जिन्हें जर्मनी में **औरोच (AUROCH)** भी कहते हैं।
ये गायें मुख्यतः विदेशों के ठंडे मौसम में पाई जाती हैं और इनकी शारीरिक संरचना ठंडे वायुमंडल के अनुकूल ही होती है। इनकी पीठ सपाट होती है और पीठ पर हम्प या कूबड़ नहीं होता। इस श्रेणी की अधिकतर गायों के सींग नहीं होते। छोटे कान और छोटी पूँछ होती है। चमड़ी और झालर भी छोटी होती है और इन गायों में अपनी चमड़ी को हिला सकने की क्षमता नहीं होती। विदेशों के ठन्डे मौसम में बहुत अधिक कीट नहीं पाए जाते और इसी वजह से इन गायों को कीट भगाने वाली लम्बी पूँछ और हिल सकने वाली लम्बी और ढीली चमड़ी की आवश्यकता नहीं होती। इनके खुर नरम होते हैं और खुरों के बीच में काफी जगह होती है। इनकी दूध उत्पादन क्षमता बहुत अधिक होती है मगर इनका दूध **ऐ1 (A1)** प्रकार का दूध होता है। विदेशों में इन गायों को इनके दूध से ज्यादा इनके माँस के लिए पालन किया जाता है। इसी वजह से विदेशों में इन्हें चारे के रूप में प्राकृतिक चारे के अलावा बहुत अधिक मात्रा में एंटीबायोटिक दवाएँ भी खिलाई जाती हैं और अमरीका और कई अन्य देशों में अब इन्हें चारे के रूप में बारीक कटा माँस भी खिलाया जाता है और दूध निकालने के लिए ऑक्सीटोसिन और अन्य हार्मोन वृद्धि की सुईयाँ लगायी जाती हैं। इन दवाओं और माँस के चारों से इनके माँस और दुग्ध उत्पादन क्षमता को बहुत अधिक बढ़ाया तो जा सकता है मगर यही दवाएँ गाय के दूध में मिल कर जब बाहर आती हैं तो इनका सेवन करने से इंसानी स्वास्थ्य को गंभीर क्षति पहुँचती हैं।
दुनिया के कई देशों में वहाँ के वैज्ञानिकों ने काफी लम्बे वक़्त तक शोध करने पर पाया कि इन विदेशी गायों के A1 प्रकार के दूध का सेवन इंसान के लिए बहुत हानिकारक है और लम्बे वक़्त तक इस दूध का सेवन लोगों को कई खतरनाक बीमारियाँ जैसे **टाइप 1 मधुमेह, पेट की बिमारी इर्रिटेबल बोवेल सिंड्रोम (आई बी एस), अपच, ऑटिज्म, बाँझपन, टीबी, रक्तचाप, हृदय रोग, गठिया, कोलेस्ट्रोल** और **कैंसर** का मरीज बना सकता है।

इन विदेशी गायों का गोबर और मूत्र भी उपयोगी नहीं होता। इनके गोबर में नुकसानदायक रोगाडुओं (Pathogen) की संख्या अधिक मात्रा में होती है जो जैविक खाद के रूप में ज्यादा कारगर नहीं होता और इनके गोमूत्र का कोई आयुर्वेदिक उपयोग नहीं है।

आप अब तक ये सोच रहे होंगे कि ये A1 और A2 दूध क्या होता है और इस दूध का हमारे स्वास्थ्य पर क्या असर होता है?

दूध की वैज्ञानिकी संरचना

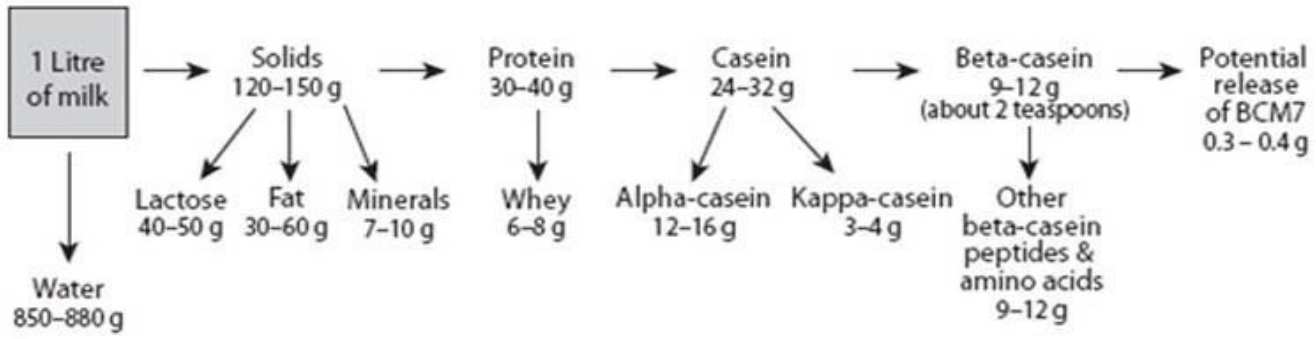

यह समझने के लिए हमें दूध की वैज्ञानिक संरचना को समझना पड़ेगा। मैं जटिल वैज्ञानिक शब्दों का अधिक प्रयोग न करते हुए इसे सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न करता हूँ।
दूध में ८५% (85%) जल होता है। बाकी बचे १५% (15%) में दूध के शुगर लैक्टोस, कैल्शियम, प्रोटीन, वसा और कई अन्य प्रकार के खनिज पदार्थ (Minerals) होते हैं।
इसमें प्रोटीन का हिस्सा ८०% कैसिइन (80% Casein) और २०% व्हेय (20% Whey) होता है।
इस कैसिइन में बीटा-कैसिइन (Beta Casein) की कुल मात्रा ३०% (30%) होती है। ऐसा कह सकते हैं कि दूध के पूरे प्रोटीन में बीटा-कैसिइन का हिस्सा ३०% होता है।

ऐ२ (A2) बीटा-कैसिइन गाय के दूध में पाया जाने वाला वह बीटा-कैसिइन है जो विश्व की सभी गायें तब से देती हैं जब से १०,००० वर्ष पहले गायों का उनके दूध उत्पादन के लिए पालन किया जाना शुरू किया गया था। ऐ२ (A2) बीटा-कैसिइन बहुत पौष्टिक होता है और इंसान के सेहत के लिए पूरी तरह से सुरक्षित होता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि ५,००० वर्ष पूर्व **यूरोप** के गोवंशों में प्राकृतिक आनुवंशिक उत्परिवर्तन (Genetic Mutation) हुआ जिससे उनके दूध के बीटा-कैसिइन (Beta Casein) की संरचना में बदलाव आ गया।
इस बदलाव का परिणाम यह हुआ कि बीटा-कैसिइन प्रोटीन में मौजूद २०९ अमिनो एसिड (209 Amino Acid chain) की श्रृंखला के ६७ वें (67th) अमिनो एसिड **प्रोलीन** (Proline) से **हिस्टीडीन** (Histidine) में बदल गया। इस नए जन्में बीटा-कैसिइन को ही ऐ१ बीटा-कैसिइन (A1 Beta Casein) कहा जाने लगा।

ए१ बीटा-कैसिइन (A1 Beta Casein) वाला दूध इंसान के पेट में जाने के पश्चात हाजमे के दौरान बीटा-कैसोमोर्फिन-७ (Beta-Casomorphin-7) छोड़ता है जिसे विज्ञान की भाषा में बीसीएम-७ (BCM-7) भी कहते हैं।
A1 दूध में बीसीएम-७ (BCM-7) की मौजूदगी ही सारी चिंता की असली वजह है। यह इंसान के शरीर में

बहिर्जात (Exogenous Opioid) होता है अर्थात यह इंसानी शरीर में कुदरती तौर पर मौजूद नहीं होता। यह बीसीएम-७ (BCM-7) इंसानी पाचन-तंत्र, अंदरूनी अंगों और मस्तिष्क पर परस्पर प्रभाव डालता है। वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने पाया है कि बीसीएम-७ (BCM-7) की वजह से लोगों में **टाइप-1 मधुमेह, उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर), दिल के रोग, गठिया, मस्तिष्क के रोग, ऑटिज्म** और अन्य कई प्रकार की गंभीर बीमारियाँ पनपती हैं और वक़्त बढ़ने के साथ गंभीर रूप ले लेती हैं।
हाल ही के वर्षों में डाक्टरों ने ऑटिज्म और विखंडितमनस्कताग्रस्त (Schizophrenia) के मरीजों के रक्त के नमूनों की जाँच में बीसीएम-७ (BCM-7) को काफी बड़ी मात्रा में मौजूद पाया।
वर्ष १९९३ (1993) में **न्यूज़ीलैण्ड** के प्रतिष्ठित औक्लैंड विश्वविद्यालय के **प्रोफेसर बॉब ऐलिअट** ने A1 दूध पर काफी गहन अध्ययन करने के बाद पाया कि A1 दूध के नियमित सेवन से वहाँ के सामोआ मूल के बच्चों में **टाइप-1 मधुमेह** की बिमारी हो रही है। बाद में प्रोफेसर ऐलिअट ने अपने सहयोगी **कोरेन मकलह्लन** के साथ मिल कर दुनिया के 20 देशों में वहाँ के बच्चों पर A1 दूध के सेवन के असर पर शोध किया और यह पाया कि A1 दूध के सेवन से **टाइप-1 मधुमेह** और **ह्रदय** की गंभीर बीमारियाँ हो रही हैं।

ऑस्ट्रेलिया के **कर्टिन विश्वविद्यालय** ने अपनी अत्याधुनिक प्रयोगशाला में इंसानी पाचन तंत्र पर A1 और A2 दूध के सेवन के असर पर शोध किया और पाया कि मनुष्य का पाचन तंत्र दोनों प्रकार के दूध पर भिन्न प्रतिक्रियाएँ दे रहा है। एक ओर जहाँ A2 दूध बड़े आराम से हज़म हो जा रहा है वहीं दूसरी ओर A1 दूध इंसानी पाचन तंत्र पर बड़े ही गंभीर दुष्परिणाम छोड़ रहा है।

भारत के हरियाणा राज्य के करनाल में स्थित **राष्ट्रिय पशु अनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBAGR)** के शोधकर्ताओं ने भी इस बात की पुष्टि की है कि भारतीय गायों का A2 दूध इंसानी स्वास्थ्य के लिए अत्यंत पौष्टिक और सुपाच्य है और विदेशी जर्सी गायों का A1 दूध हमारे स्वास्थ्य पर गंभीर दुष्परिणाम दिखा रहा है और **मधुमेह, ह्रदय रोग, गठिया, बाँझपन** और पेट के **आई बी एस** जैसे रोगों को जन्म दे रहा है।

अब प्रश्न उठता है कि भारत में विदेशी बॉस टॉरस प्रजाति की गायें आयीं कैसे?

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें भारत के कुछ दशक पूर्व के इतिहास में जाना पड़ेगा। मैं इस त्रासदी के लिए भारत सरकार द्वारा उठाये गए मुख्यतः दो निर्णयों को सबसे अधिक जिम्मेद्दार मानता हूँ। वे दो निर्णय हैं १९६० के दशक की **हरित क्रांति (कृषि क्रांति)** और १९७० के दशक की **सफ़ेद क्रांति (दुग्ध क्रांति)**।

आजादी के बाद से ही भारतवर्ष कई प्रकार की कठिनाइयों से जूझ रहा था। गरीबी, भुखमरी, सामाजिक और आर्थिक असंतुलन, सूखा, अकाल और विभिन्न प्राकृतिक आपदाएँ इनमें प्रमुख थीं। इसके परिणामस्वरूप किसान अकाल और भुखमरी से परेशान था। जिस भारतवर्ष की आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक सम्पन्नता से आकर्षित हो कर एक वक़्त पर अँग्रेज यहाँ आये थे, वही भारत २०० वर्षों के अँग्रेजी गुलामी और शोषण से आज़ादी प्राप्त करने के बाद अपनी दरिद्रता पर रो रहा था। खेती करना अब पहले जैसा संभव नहीं था।
तब १९६० (1960) के दशक में भारत सरकार ने **हरित क्रांति** का नारा दिया। हरित क्रांति से अभिप्राय देश के सिंचित एवं असिंचित कृषि क्षेत्रों में अधिक उपज देने वाले संकर तथा बौने बीजों के उपयोग एवं कृषि के आधुनिक उपकरणों के प्रयोग से फसल उत्पादन में व्यापक वृद्धि करना और भारतवर्ष को कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना था।
भारत सरकार ने बड़ी मात्रा में विदेशों से बीज, उर्वरकों, रासायनिक खाद, कीटनाशकों, आधुनिक सिंचाई और कृषि यंत्रो और उपकरणों का आयात करना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि पशु आधारित कृषि की

जगह विदेशी ट्रैक्टरों और अन्य कृषि यंत्रों ने ले ली। गाय के गोबर और जैविक खाद की जगह विदेशों से आयातित रासायनिक खादों और रासायनिक कीटनाशकों ने ले लिया।
इससे गरीब किसानों के लिए कई गायें और बैल रखना आर्थिक रूप से कठिन हो गया और हज़ारों की तादाद में कम दूध देने वाली देशी गायें और खेती में काम न आने वाले बैलों को बूचड़खानों और कसाईघरों में बेच दिया गया या आवारा पशुओं की तरह रास्तों में छोड़ दिया गया। इसका दूरगामी दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत में भारतीय देशी गोवंश की कई प्रजातियाँ या तो विलुप्त हो गयीं या विलुप्तता के कगार पर पहुँच गयीं। दूसरी ओर जैसे-जैसे समय बीतता गया रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने चाहे फसलों का उत्पादन बढ़ा दिया हो मगर ज़मीन की उर्वरकता को क़रीब-क़रीब समाप्त कर दिया।

आपको यह जान कर अत्यंत आश्चर्य होगा कि जब १९६० के दशक में भारत में अंधाधुंध विदेशी कृषि यंत्रो और उर्वरकों को खरीदने की होड़ मची थी और भारतीय गायों और बैलों को बेकार समझ कर छोड़ा या बेचा जा रहा था, उसी वक़्त एक अन्य देश ब्राज़ील की सरकार अपने किसानों के लिए भारतीय नस्ल की दुधारू प्रजाति की **गीर**, **कांक्रेज** और **ओंगल** गायों और साँड़ों को अपने देश में बड़ी मात्रा में आयात कर रही थी।
ब्राज़ील के वैज्ञानिकों ने अपने देश में गहन शोध करने पर यह पाया था की उनके देश में पायी जाने वाली ऐ१ (A1) किस्म की जर्सी और होल्सटीन गायों का दूध वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। ब्राज़ील के वैज्ञानिकों ने विश्व की अनेक गायों की प्रजातियों पर अध्ययन किया और अंत में उन्होंने पाया कि सिर्फ भारतीय देशी नस्ल की गायें ही पौष्टिक ऐ२ (A2) दूध देने में सक्षम हैं।
तब बिना किसी विलम्ब के ब्राज़ील की सरकार ने भारतीय नस्ल की देशी गीर और ओंगल गायों और साँड़ों का बड़ी तादाद में आयात करना शुरू किया और अपने देश ब्राज़ील में भारतीय गीर, कांक्रेज और ओंगल गायों और साँड़ों का बड़ी तादाद में प्रजनन और जनसंख्या वृद्धि करना भी शुरू किया। साल १९६१ तक ब्राज़ील सरकार ने गुजरात से मात्र २५० (250) गीर गायें और साँड़ आयात किया था। उसके बाद भारत सरकार ने भारतीय नस्लों की गायों के सीधे निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। तब ब्राज़ील की सरकार ने **गुजरात** से गीर साँड़ों के वीर्य और भ्रूण को ऊँची कीमत पर खरीदना शुरू किया। आज इसका परिणाम यह है कि जहाँ पूरे भारत में गीर गायों की संख्या करीब ३,००० (3,000) है, वहीं ब्राजील में आज सफलतापूर्वक प्राकृतिक और कृत्रिम विर्यसेचन के माध्यम से सिर्फ गीर गायों और साँड़ों की संख्या लगभग ७० लाख (70,00,000) है। आज ब्राज़ील विश्व में भारतीय नस्ल की गीर गायों का सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया है। **आश्चर्य हुआ न आपको यह जान कर !**

ब्राज़ील का एक किसान गीर गायों को चराता हुआ

आज ब्राज़ील ने पूर्णतया भारतीय नस्ल की दुधारू गायों को अपना कर न सिर्फ अपनी जनता के लिए पौष्टिक ऐ२ (A2) दूध की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लिया है बल्कि उसने **गीर, कांक्रेज और ओंगल** के पार प्रजनन

(क्रॉस ब्रीडिंग) से एक अन्य **ब्राह्मण** प्रजाति की गाय को भी विकसित कर लिया है और बड़ी मात्रा में इन गायों को अमरीका, वेनेज़ुएला और मेक्सिको जैसे देशो में काफी ऊँची कीमत में निर्यात कर अपनी अर्थव्यवस्था को भी सशक्त कर रहा है और अपने किसानों के लिए अत्यंत लुभावने और कमाऊ अवसर भी प्रदान कर रहा है। आज ब्राज़ील के किसान भारतीय देशी नस्ल की गायों और साँड़ों को विदेशों में निर्यात कर के आर्थिक रूप से बहुत ही संपन्न हैं।

ब्राह्मण गाय

हरित क्रान्ति के दौर में भारत सरकार का सारा ध्यान कृषि उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ाने की ओर था। इस जद्दोजहद में भारतीय पशुपालन उद्द्योग काफी पिछड़ गया और देश में दूध का उत्पादन निरंतर घटता गया। तब भारत सरकार ने १९७० (1970) के दशक में **राष्ट्रीय डेअरी विकास बोर्ड** के अंतर्गत **सफ़ेद क्रांति (दुग्ध क्रांति)** का नारा दिया। इसे अंग्रेजी में **वाइट रिवोल्यूशन** या **ऑपरेशन फ्लड** भी कहा गया।

सफ़ेद क्रांति के तहत भारत सरकार ने **यूरोपीय संघ** से बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी गायों के दूध से निर्मित दूध के पाउडर (Skimmed Milk Powder) का आयात किया तत्पश्चात बहुत बड़ी संख्या में विदेशी नस्ल की **अमरीकी जर्सी, होल्सटीन, फ्रेसियन, गर्नजी, लाल डेनिश** और **स्विस गायों** को आयात करना शुरू किया। जनता में टीवी व अखबारों के माध्यम से यह प्रचार किया गया कि ये गायें भारतीय देशी नस्ल की गायों की तुलना में बहुत अधिक दूध का उत्पादन करती हैं।
बस फिर क्या था! चारों ओर विदेशी नस्ल की महँगी गायों को खरीदने की होड़ मच गयी। जल्दी से जल्दी अधिक दूध उत्पादन के होड़ में भारतीय देशी नस्ल की गायों की जगह विदेशी जर्सी गायों ने ले ली। हालात तो यहाँ तक पहुँच गए कि लोग कम दूध देने वाली देशी नस्ल की गायों का प्रजनन अधिक दूध देने वाली विदेशी जर्सी और होल्सटीन फ्रेसियन साँड़ों से करवाने लगे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देशी गायों की मूल वंशावली विक्षित हो गयी और वे वर्ण-संकर (Hybrid) बछड़ों को जन्म देने लगीं। इस क्रॉस ब्रीडिंग का दुष्परिणाम यह भी हुआ कि मूल रूप से शुद्ध ऐ२ (A2) दूध देने वाली देशी गायों के दूध में हानिकारक ए१ बीटा-कैसिइन (A1 Beta Casein) और बीसीएम-७ (BCM-7) भी काफी बड़ी मात्रा में आ गया और वे भी A1 प्रकार का दूध देने लगीं।

इधर भारत सरकार का सारा ध्यान दूध के उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ाने की ओर था। इस क्रम में दूध के गुणवत्ता की ओर ना तो विशेष ध्यान दिया गया और न ही इससे पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों पर कोई गंभीर शोध करने का प्रयास किया गया।
कुल मिलाकर इन सभी चीजों का परिणाम यह निकला कि भारतीय किसानों की नज़र में अपनी देशी नस्ल की

भारतीय गायें कम दूध देने वाली निम्न दर्जे की लगने लगी। किसान को लगने लगा कि देशी गायें कम दूध देती हैं और इस वजह से इनका रख-रखाव भी बहुत खर्चीला होता है। जो किसान १० से १५ देशी गायें रखता था वह उन सभी देशी गायों की तुलना में २ या ३ विदेशी जर्सी गायें पाल कर कहीं अधिक दूध का उत्पादन कर सकता था।

इसका परिणाम यह हुआ कि किसान बड़े पैमाने पर देशी नस्ल की गायों को कसाइयों के हाथों बूचड़खानों में कटने के लिए बेचने लगे या रास्तों पर आवारा पशुओं की तरह घूमने को छोड़ दिया। इसके बहुत ही घातक और अपरिवर्तनीय परिणाम आज हमारे समक्ष हैं। भारतवर्ष में पायी जाने वाली ७० (70) से अधिक देशी गायों की उम्दा प्रजातियों में से अधिकतर हमेशा के लिए विलुप्त हो गयी हैं और जो बची हैं वो लुप्तप्राय हैं। आज अधिकतर गाँवों में पूर्ण देशी नस्ल की गाय को देखना लगभग असंभव है। जो थोड़ी बहुत पूर्ण शुद्ध देशी नस्ल की गायें बची हैं वो कुछ मंदिरों, सरकारी अथवा स्वंसेवी संस्थाओं द्वारा चलित गौशालों में संरक्षित हैं।

हरित क्रांति और सफ़ेद क्रांति के पश्चात् देश की कृषि व्यवस्था और किसानों की आर्थिक आपदा की शुरुआत।

मैं भारत सरकार द्वारा शुरू की गयी हरित क्रांति (कृषि क्रांति) और सफ़ेद क्रांति (दुग्ध क्रांति) को सही मायने में क्रांति नहीं मानता। क्रांति का परिणाम तो सदैव सृजनात्मक होना चाहिए। लेकिन यहाँ तो पूरा ही विपरीत नकारात्मक दुष्परिणाम सामने आया।

दूरगामी दूरदर्शिता के अभाव और विदेशी मानसिकता से ग्रस्त सरकार में बैठे कुछ लोगों की हड़बड़ी में उठाये गए कुछ कदमों का दुष्परिणाम आज सारा देश और विशेषकर किसानों को भुगतना पड़ रहा है। विदेशी चीजों के प्रति प्रबल प्रेम और स्वदेशी वैदिक तकनीक की अनदेखी कर उठाये गए कदमों के परिणामस्वरूप भारतवर्ष की कृषि अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे एक घातक आर्थिक आपदा की ओर अग्रसर हो चुकी थी और इससे बेपरवाह सरकार ने इसकी सुध लेने या इसमें सुधार करने की जरा भी ना सोची।

हरित क्रांति में विदेशों से आयातित महँगे बीजों, रासायनिक खाद, उर्वरक, रासायनिक कीटनाशकों और महँगे कृषि उपकरणों के अंधाधुंध और अनियंत्रित इस्तेमाल से खेतों की मिट्टी में पाए जाने वाले प्राकृतिक लाभकारी सूक्ष्म-जीवाणु और केंचुए ख़त्म होने लगे और मिट्टी की प्राकृतिक उपजाऊ क्षमता धीरे-धीरे कम होने लगी और तीन-चार वर्षों में ही यह लगभग पूरी तरह से समाप्त हो कर बंजर हो गयी। अब किसान के पास खेती करने के लिए रासायनिक खादों और उर्वरकों को इस्तेमाल करने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा। चूंकि हमारी भारतीय कृषि-व्यवस्था गोवंश-आधारित वैदिक-जैवीक प्रणाली से कृत्रिम रासायनिक-प्रणाली में तब्दील हो चुकी थी, इस वजह से किसान के पास अब महँगी रासायनिक-खाद आधारित कृषि करने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं बचा था। या यूँ कहें कि जान-बुझ कर उन्हें कोई अन्य सस्ता विकल्प नहीं बताया गया।

रासायनिक खादों और उर्वरकों के रूप में आमतौर पर इस्तेमाल में आने वाले खादों व उर्वरकों के नाम हैं **यूरिया, डाईस, अमोनियम नाइट्रेट, डी.ए.पी, पोटैशियम नाइट्रेट, एन.पी.के, अमोनियम सल्फेट, कैल्शियम नाइट्रेट, डाईमोनियम फॉस्फेट, मोनोअमोनियम फॉस्फेट, ट्रिपल सुपर फॉस्फेट, पोटैशियम क्लोराइड**। इनमें मौजूद हानिकारक और विषैले रसायन मिट्टी में घुल कर उसमें पैदा होने वाली फसलों के भीतर पहुँच जाते हैं और उन फसलों से उपजे अनाज को सेवन करने से ये इंसानों और जंतुओं के पेट में पहुँच कर कई गंभीर और घातक बीमारियों को जन्म देने लगते हैं। इसी प्रकार विषैले रासायनिक कीटनाशकों को फसलों, फलों और सब्जियों पर छिड़काव करने से ये उन फलों और सब्जियों के भीतर पहुँच जाते हैं और इनका सेवन हमें कई गंभीर बीमारियों का मरीज बना देता है। रासायनिक विषैले कीटनाशकों का छिड़काव करते वक़्त ये कीटनाशक किसान के

श्वासन-तंत्रिका के भीतर प्रवेश कर उसे कई प्रकार से शारीरिक विकलांग बना रहे हैं और अधिकतर मामलों में तो कैंसर जैसे जानलेवा रोग और नपुंसकता का मरीज बना दे रहे हैं।

सफ़ेद क्रांति (दुग्ध क्रांति) के दौरान ज्यादा से ज्यादा दूध उत्पादन करने की मची अंधाधुंध होड़ में भारतीय किसानों ने बिना सोचे-समझे विदेशी नस्ल की महँगी जर्सी गायों को बहुत बड़े पैमाने पर खरीदना शुरू किया। इस होड़ में भारतीय स्वदेशी नस्ल की गायों को कम दूध देने वाली एवं अनुपयोगी समझ कर हीन-दृष्टि से देखा जाने लगा। वहीं दूसरी ओर भारतीय नस्ल की स्वदेशी गायों का विदेशी जर्सी साँड़ों से प्रजनन कराया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि सदियों से भारत में पाली जा रही स्वदेशी गायों की अधिकतर नस्लें आज पूरी तरह से विलुप्त हो चुकी हैं और जो थोड़ी बहुत बची हैं वे विलुप्तता के कगार पर हैं। देशी गायों का विदेशी जर्सी साँड़ों से प्रजनन कराने से देशी गायों की मूल वंशावली बुरी तरह प्रभावित हुई और मूल देशी गायों की नस्ल लगभग समाप्त हो गयी। मूल देशी नस्ल की गायों का पौष्टिक ऐ२ (A2) दूध भी दूषित हो कर ऐ१ (A1) दूध में तब्दील हो गया। विदेशी जर्सी और देशी गायों के प्रजनन से जन्में बच्चों का गोबर और गोमूत्र भी कई प्रकार के हानिकारक विषाणुओं से दूषित हो गया था और इनका खेती में भी ज्यादा उपयोग नहीं रह गया।

अब प्रश्न यह उठता है कि हरित क्रांति और सफ़ेद क्रांति से आखिर हमारे देश को हासिल क्या हुआ?

बेशक इन दो क्रांतियों के परिणामस्वरूप देश में खाद्यान्न भंडारण, पशु-पालन और दूध उत्पादन में व्यापक वृद्धि हुई हो मगर यह अस्थायी समाधान था और दूरगामी दृष्टिकोण से किसानों के लिए आर्थिक रूप से अत्यंत ही घातक साबित होने जा रहा था।

एक ओर हरित क्रांति के दौर में खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने की जल्दबाजी में भारत सरकार ने बहुत बड़ी मात्रा में रासायनिक खादों और रासायनिक कीटनाशकों को विदेशों से आयात किया और किसानों को इन रासायनिक खादों को उनके खेतों की भूमि में अधिक से अधिक डालने को प्रोत्साहित किया। चारों ओर जल्दी से जल्दी उत्पादन बढ़ाने की होड़ मची थी। खेतों की भूमि और फसलों पर इन रासायनिक खादों, उर्वरकों और विषैले कीटनाशकों से होने वाले दूरगामी दुष्परिणामों की ओर कोई गंभीर शोध नहीं किया गया जिसके अत्यंत ही घातक दुष्परिणाम आज हमारे पूरे देश के समक्ष हैं।

जिस देश की आधी से अधिक आबादी प्रत्यक्ष तौर पर रोजगार के रूप में खेती पर निर्भर है, आज उसी भारत के कई राज्यों में वहाँ के किसानों की हालत बद से बद्तर हो चुकी है। निरंकुश विदेशी कंपनियाँ अपने मनमाने ढंग से जब-तब बीजों, रासायनिक खादों और कीटनाशकों की कीमतें बेतहाशा ढंग से बढ़ा देती हैं। चूंकि किसानों के पास इन बीजों, रासायनिक खादों और रासायनिक कीटनाशकों को खरीदने के अलावा अन्य कोई विकल्प मौजूद ना होने के कारण उन्हें मजबूरीवश इस शोषण का शिकार होना पड़ता है। इससे किसानों की खेती के लागत में व्यापक बढ़ोतरी हो जाती है। कई बार सरकार को इन बीजों और रासायनिक खादों को किसानों तक कम दर पर पहुँचाने के लिए सरकारी खजाने से हजारों करोड़ों रुपये की राशि **आर्थिक अनुवृत्ति (Subsidy)** के रूप में देनी पड़ती है जो देश की अर्थव्यवस्था पर आर्थिक बोझ को बढ़ाता है। अनुवृत्ति (Subsidy) के रूप में दिए गए हज़ारों करोड़ रुपये सीधे विदेशी कम्पनियों के पास पहुँचते हैं और उन देशों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का काम करते हैं।

खेतों की मिट्टी को जोतने के लिए महँगे ट्रैक्टर सभी किसान खरीद नहीं पाते। उन्हें ये ट्रैक्टर महँगे किराये पर दुसरे किसानों से लेना पड़ता है। जो किसान थोड़े आर्थिक संपन्न होते हैं और ट्रैक्टर खरीदने में सक्षम होते हैं, उन्हें इन ट्रैक्टरों को चलाने के इंधन के लिए बहुत ज्यादा डीजल खरीदना पड़ता है। यह खर्च भी खेती की लागत में जुड़ जाता है।

देश के अधिकांश ग्रामीण इलाकों में बिजली की भारी कमी होने की वजह से जुताई के बाद खेतों की पानी से सिंचाई के लिए खेतों में डीजल चलित विद्युत जनरेटरों से मोटर पंप लगाना पड़ता है। इसमें भी बहुत अधिक डीजल खर्च होता है और यह खर्च भी खेती की लागत में जुड़ जाता है। इसके अलावा खेतों में फसलों की बोआई और कटाई में लगने वाले मानव संसाधन के मजदूरी के खर्च भी खेती के लागत में बढ़ोतरी करते हैं।

खेती की उपज को सही समय पर बेचने के लिए उचित एवं व्यवस्थित मार्केट की अनुपलब्धता के कारण किसान अपनी फसल को सरकार को बेचने को विवश होते हैं। सरकार द्वारा फसल को खरीदे जाने वाला **न्यूनतम समर्थन मूल्य** पहले से तय रहता है। इस कारण खेती के लागत में हुई वृद्धि से होने वाले मुनाफे में कमी या नुकसान को स्वयं किसान को ही वहन करना पड़ता है। आमतौर पर किसानों को हर बार खेती में सिर्फ आर्थिक नुकसान ही उठाना पड़ता है। कई बार तो हालात ऐसे हो जाते हैं कि बेचारे किसान को खेती करने में लगी लागत की राशि भी फसल बेच कर हासिल नहीं हो पाती है। इस कारण खेती में पूँजी लगाने के लिए किसान सरकारी बैंकों से कर्ज लेते हैं और जो किसान शिक्षित ना होने कारणवश बैंकों तक नहीं पहुँच पाते वे मजबूरीवश साहूकारों से काफी ऊँचे ब्याज दर पर कर्ज ले कर खेती की पूँजी का जुगाड़ करते हैं और खेती में नुकसान होने पर आर्थिक कर्ज के बोझ तले दबे चले जाते हैं। यदि उन्हें कभी मुनाफा हो भी गया तो उस मुनाफे का अधिकांश हिस्सा कर्ज का ब्याज चुकाने में चला जाता है। कई बार तो कर्ज ना चुका पाने की स्थिति में किसानों के ट्रैक्टर को भी बैंक द्वारा जब्द कर लिया जाता है। बिना ट्रैक्टर के खेती करना किसान के लिए लगभग असंभव हो जाता है।

पूरी खेती के दौरान किसान पूरी तरह से मौसम की दया पर निर्भर रहते हैं। अगर खेती के दौरान कोई प्राकृतिक आपदा आ जाए तो महीनों की मेहनत से खून-पसीना बहा कर की गयी खेती पल भर में तबाह हो जाती है। कभी सूखा तो कभी बेमौसम बारिश किसानों की मेहनत पर पानी फेर देती है। ऐसे में कई बार किसानों द्वारा खेती में लगाई सारी पूँजी डूब जाती है और सरकार की ओर से उन्हें मुआवजे की राशि के नाम पर कोई न कोई छोटी सी रकम थमा दी जाती है जो कि अधिकतर मामलों में उन किसानों के वास्तविक नुकसान के मुकाबले नगण्य सी होती है। कुछ मामलों में मैंने तो यहाँ तक देखा है कि खेती में कई हज़ार रुपये गँवाने वाले किसानों को सरकार की तरफ से ३० और ४० रुपये के चेक जारी किए गए हैं और वह चेक भी सरकारी बैंकों में बाउंस कर जाते हैं। **आपको यह सुन कर यकीन नहीं हो रहा होगा, मगर यह वास्तविकता है।**

कुल मिलाकर इन सब चीजों का परिणाम यह हो रहा है कि हर ओर से शोषित हो रहे किसान, जिन्हें हम **अन्नदाता** कहते हैं, स्वयं भुखमरी और अभाव की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। हालात इतने गंभीर और दयनीय हैं कि ज्यादातर किसान तो अपने परिवार के लिए दो वक़्त का भोजन जुटाने में भी अक्षम हैं। वे गंभीर रूप से कुपोषण के शिकार हैं। पैसों के अभाव के कारण अधिकतर किसान अपने बच्चों को स्कूलों में पढ़ने भी नहीं भेज पाते। इससे ग्रामीण अक्षरता-दर पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती चली जाती है। इतनी परेशानियों से तनावग्रस्त किसान कई बार विवश हो कर बड़ी तादाद में आत्महत्या तक कर लेते हैं।

दूसरी ओर **सफ़ेद क्रान्ति** के दौर में हड़बड़ी में देशी गोवंश की अनदेखी कर विदेशी नस्ल की जर्सी गायों को अपनाना किसानों को बहुत भारी पड़ा। ये विदेशी गायें विदेशों के ठन्डे मौसम के अनुकूल ढली थीं और इनकी प्राकृतिक और शारीरिक संरचना भी ठन्डे मौसम के अनुरूप थी। ऐसे में इन गायों को भारतीय गर्म वायुमंडल में लाने का सरकारी निर्णय एक बहुत बड़ी भूल थी।
विदेशों के अधिकांश ठंडे वायुमंडल में रहने वाली ये जर्सी गायें खुद को भारतीय गर्म वायुमंडल में ढाल नहीं पायीं। इन जर्सी गायों को पालने के लिए किसानों को खर्चीले शेडों का निर्माण कराना पड़ता है। इनके खुर

नरम होते हैं और खुरों के बीच में काफी जगह होती है। इस वजह से ये गायें उबड़-खाबड़ रास्तों में तेजी से चलने में अक्षम होती हैं और खेत जोतने के काम भी नहीं आ पातीं। ये गायें थोड़ी सी गर्मी और धूप में ही हाँफने लगती हैं। गर्मी से बचाने के लिए इन गायों को दिन में कई बार पानी से नहलाने की जरुरत पड़ती है और पंखों के हवा में रखना पड़ता है। चूँकि ग्रामीण इलाकों में बिजली की कमी होती है, इस वजह से किसानों को डीजल चलित जनरेटर के विद्युत् से इन पंखों को चलाना पड़ता है। इन गायों के गर्भाशय (Uterus) का मार्ग हमेशा खुला रहता है जिसकी वजह से इनमें गर्भाशय के संक्रमण का खतरा बना रहता है। ये गायें सिर्फ भूसे या घास के हरे चारे को खा कर जीवित नहीं रह सकतीं। हरे चारे के अलावा इन गायों के अधिक दुग्ध-उत्पादन क्षमता को बरकरार रखने के लिए इन्हें काफी महँगा अतिरिक्त पूरक आहार (Supplementary Diet) भी खिलाना पड़ता है। भारतीय वायुमंडल में खुद को ढाल न सकने के कारण इन गायों को कई प्रकार की गंभीर बीमारियाँ हो जाती हैं। इन बीमारियों में प्रमुख हैं :

- **मैस्टिटीस (स्तन की सूजन)**
- **केटोसिस**
- **खुर एवं नाक के संक्रमण (फूट एंड माउथ डिजीज)**
- **मस्तिष्क बुखार (मैड काऊ डिजीज)**
- **स्तन्य ज्वर (मिल्क फीवर)**
- **गर्भाशय का संक्रमण**
- **श्वास सम्बंधी संक्रमण (रेस्पिरेटोरिअल इन्फेक्शन)**

मैस्टिटीस रोग से प्रभावित गाय

मैड काऊ बिमारी से प्रभावित गाय

फूट एंड माउथ बीमारी से संक्रमित गाय के खुर व नाक

इन बीमारियों से बचाव के लिए इन गायों को कई प्रकार की महँगी रोग प्रतिरोधक दवाएँ निरंतर देती रहनी पड़ती हैं। इसके बावजूद अचानक बीमार हो जाने पर इनका इलाज कराना बहुत ज्यादा खर्चीला होता है।

भारतीय किसान इन विदेशी नस्ल की गायों को इनके अधिक दूध उत्पादन क्षमता के लिए यह सोच कर पालते हैं कि एक विदेशी जर्सी गाय 3-4 देशी नस्ल की गायों के बराबर या उनसे ज्यादा दूध देगी और इन जर्सी गायों के रख-रखाव का खर्च 3-4 देशी नस्ल की गायों के तुलना में कम आयेगा। जब्कि हकीकत में एक जर्सी गाय के रख-रखाव में देशी नस्ल की 3-4 गायों के रख-रखाव से कहीं अधिक खर्च आता है।

आइये अब जानते हैं गायों के स्तन्यस्त्रवण चक्र (Lactation Cycle) के बारे में।

किसी जर्सी गाय को काफी महँगी कीमत पर सिर्फ उसके अधिक दूध उत्पादन के लिए खरीद लेना क्या वाकई में एक समझदारी भरा कदम है? मैं ऐसा नहीं मानता।

यहाँ यह बताना जरुरी है कि विश्व में गायों को **दुधारू पशु (Dairy Cattle)** और **गोमाँस पशु (Beef Cattle)** की श्रेणी में रखा गया है। विदेशी नस्ल की अधिकांश गायें गोमाँस पशु (Beef Cattle) की श्रेणी में आती हैं। विदेशों में गायों को उनके दूध के बजाय उनके गोमाँस के लिए पालन किया जाता है। यही कारण है कि विदेशों में इन गायों को चारे में मिला कर बहुत बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार की **एंटीबायोटिक दवाएँ** खिलायी जाती हैं और **ऑक्सीटोसिन (Oxytocin)** जैसे **वृद्धि हार्मोन** की सुईयाँ लगायी जाती हैं जिससे उनका शरीर बहुत जल्द बड़ा आकार ले लेता है और इनमें माँस की बहुत अधिक बढ़ोतरी हो जाती है।

बेशक विदेशी जर्सी गायें अधिकांश भारतीय देशी गायों की नस्लों से अधिक दूध देती हैं, मगर यह दुग्ध उत्पादन क्षमता अधिक समय तक बरकरार नहीं रहती। गायों की दुग्ध उत्पादन क्षमता को बरकरार रखने के लिए उन्हें बार-बार गर्भ धारण कर बछड़ों को जन्म देना पड़ता है। बछड़े को जन्म देने से ले कर अगले गर्भ धारण तक की अवधी में हुए दूध उत्पादन को **स्तन्यस्त्रवण चक्र (Lactation Cycle)** कहते हैं।

देशी नस्ल की गायें काफी आसानी से गर्भवती हो जाती हैं। गर्भ धारण करने के तीन महीनों तक ये दूध देती हैं तत्पश्चात इनकी दूध उत्पादन क्षमता अगले ९ (9) महीनों तक बंद हो जाती है। इन गायों के बछड़े जन्म के वक़्त बहुत पतले व छोटे होते हैं। इस वजह से इन देशी गायों को बच्चा जन्म देने में अधिक तकलीफ नहीं होती और इनके बछड़ों में मृत्यु दर संख्या बहुत कम होती है। सामान्यतः एक देशी नस्ल की गाय अपने जीवनकाल में १० से १५ (10-15) बछड़ों को जन्म देती है और इतने वर्षों तक इसकी दूध उत्पादन क्षमता बरकरार रहती है।

इसके विपरीत विदेशी जर्सी गायें गर्भ धारण करने के बाद भी लगातार दूध देती रहती हैं। बछड़े के जन्म के 2 महीने पहले तक इनका दूध उत्पादन होता रहता है। इस वजह से ये गायें धीरे-धीरे कमजोर होने लगती हैं और इनके दूध का अनुपात भी कम होता चला जाता है। जर्सी गाय के नवजात बछड़े भारी और बड़े आकार के होते हैं। इस वजह से इन्हें जन्म देने में गाय को बहुत अधिक तकलीफ होती है और अधिकतर बछड़े जन्म लेते ही मर जाते हैं। जर्सी गाय के नवजात बछड़ों में मृत्यु-दर की संख्या काफी अधिक होती है। इन वजहों से जर्सी गाय की **स्तन्यस्त्रवण चक्र (Lactation Cycle)** देशी गाय की तुलना में बहुत ही कम होती है। यही वजह है कि विदेशों में जर्सी गायें 2 से 3 बछड़ों को ही जन्म दे पाती हैं और उसके बाद उनका दूध उत्पादन रुक जाता है और उन्हें उनके गोमाँस के लिए कटने के लिए बूचड़खानों में भेज दिया जाता है।

भारत में जब इन गायों का दूध उत्पादन बंद हो जाता है तो ये किसानों के लिए किसी काम की नहीं रहतीं। जर्सी बैल या साँड़ काफी आलसी स्वभाव के होते हैं और इसी वजह से इनका खेती में भी कोई उपयोग नहीं होता। इसी वजह से किसान इन्हें रास्तों पर खुला छोड़ देते हैं। **आपने गौर किया होगा कि रास्तों में आवारा घूमने वाले गाय या साँड़ों में अधिकतर विदेशी जर्सी नस्ल के होते हैं।**

सरल शब्दों में कहें तो विदेशी जर्सी गायें लघु अवधी (Short Term) में रोजाना अधिक दूध का उत्पादन तो करती हैं मगर दीर्घकालिक अवधी (Long Term) में यह दूध उत्पादन क्षमता बरकरार नहीं रहती। मौसम में जरा सा बदलाव होते ही इनके दुग्ध उत्पादन में 50 से 80 फीसदी की कमी आ जाती है। कुल मिलाकर यदि विदेशी जर्सी गायों के **खर्चीले रख-रखाव, खर्चीले इलाज, महँगे चारे** के खर्च को उनके जीवनकाल के कुल दूध उत्पादन से तुलना की जाए तो पाया जायगा कि इन गायों को रखने से किसान को बहुत अधिक आर्थिक घाटा होता है।

भारतीय देशी गोवंश की अनदेखी की वजह से हुई भारतीय आर्थिक और स्वास्थ्य आपदा की शुरुआत।

जरा ठीक से याद कीजिये कि क्या आज से पाँच या छः दशक पहले आपके दादाजी, दादीजी, नाना या नानी को मधुमेह, कैंसर, रक्तचाप इत्यादि बीमारियाँ होती थीं?
नहीं न!
मैं बिलकुल आत्मविश्वास से कह सकता हूँ उस ज़माने में अधिकतर लोगों ने तो इन बीमारियों का नाम भी नहीं सुना होगा। फिर आखिर ऐसा क्या हो गया कि उन्हीं गाँवों और शहरों के नागरिक आज इन गंभीर बीमारियों के मरीज बन गए हैं? आज ग्रामों और शहरों में शुद्ध दूध की बहुत किल्लत है। दुधारू गोवंश की भारी कमी, दूध का घटता उत्पादन और दूध की निरंतर बढ़ती माँग की वजह से आज बाजारों में उपलब्ध अधिकांश दूध या तो नकली है या खतरनाक स्तर पर मिलावटी है। आज यह स्थिति कितनी खतरनाक है यह जानने के लिए कृपया निम्नलिखित पंक्तियों को ध्यानपूर्वक पढ़ें :

> आज पूरे भारतवर्ष में आपूर्ति होने वाले ६८% से अधिक दूध (पैकेट वाला और खुला) की गुणवत्ता भारतीय खाद्य मानकों द्वारा निर्धारित न्यूनतम मानकों पर भी विफल हो रही है ।
> गुर्भाग्यवश, शहरों में यह स्थिति और भी बद्दतर है जहाँ दूध के अधिकाँश नमूनों में मिलावट करने के लिए पानी, दूध पाउडर, स्वीटनर का इस्तेमाल पाया गया और कुछ नमूनों में तो **डिटर्जेंट पाउडर, हाइड्रोजन पेरोक्साइड** और **यूरिया** जैसे खतरनाक रसायनों के अंश भी पाये गये ।
>
> **--- भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (FSSAI) द्वारा भारतीय सुप्रीम कोर्ट में जुलाई २, २००३ में दायर की गयी रिपोर्ट।**

दूध की भारी किल्लत और बाज़ार में दूध और दूध से बने उत्पादों की भारी माँग ने मिलावटखोरी को काफी बढ़ावा दिया है। आज दूध में मिलावट इतने खतरनाक स्तर पर पहुँच चुका है कि मुनाफा कमाने की होड़ में दूध में विषैले रसायनों तक की मिलावट की जा रही है। लोगों की सेहत पर इस नकली दूध से पड़ने वाले दुष्प्रभाव से बेपरवाह मिलावटखोर नकली दूध से भारतीय बाजार को भरे जा रहे हैं। त्योहारों के मौके पर भारत के कई राज्यों में सैकड़ों किलो नकली दूध व नकली खोवा पकड़े जाने की खबर अब आम बात हो गयी है।

आज देश के अधिकतर राज्यों में शुद्ध, मिलावट-रहित दूध मिलना कठिन हो गया है। शहरी इलाकों की बात तो छोड़िये, ग्रामीण इलाकों में भी लोग गाय या भैंस पालने से बचने लगे हैं। आजकल गाँवों में भी लोग अपनी रोजाना की जरुरत के लिए दुसरे ग्रामीणों के गायों या भैंसों का दूध खरीदते हैं। ग्रामीण भाषा में इसे **दूध उठौना** करना कहते हैं।

ऐसा नहीं है कि इन सारी विषम परिस्थितियों का प्रभाव सिर्फ गाँवों या किसानों पर ही पड़ा है। देश के विकसित माने जाने वाले शहरों में रह रहे नागरिकों को भी गंभीर परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं। हमारी राज्यों की सरकारों ने शहरों में दुधारू पशुओं के खटाल खोलने पर सख्त पाबंदी लगा रखी है। खटाल सिर्फ शहरी इलाकों के बाहर ही खोले जा सकते हैं। इस पाबंदी के पक्ष में सरकारें यह तर्क देती हैं कि खटालों के भीतर पशुओं के गोबर से गन्दगी फैलती है और इस गोबर पर मच्छर पलते हैं और इससे डेंगू और मलेरिया जैसी खतरनाक बीमारियाँ फैलती हैं। मुझे यह बहुत हास्यापद लगता है कि सरकारें खटाल मालिकों को खटालों से उत्पन्न गोबर का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित ना कर उन्हें खटाल खोलने से ही रोकती हैं। इतनी कानूनी पाबंदियों के बावजूद जो थोड़े-बहुत खटाल चलते भी हैं, वे अपनी रोजाना दूध उत्पादन की लागत को कम करने के लिए पशुओं के बछड़ों को पालने से बचते हैं व पैसों के लालच में इन बछड़ों को कसाइयों के हाथों बूचड़खानों में कटने के लिए बेच देते हैं। बिना बछड़ों के दूध निकालने के लिए गायों और भैंसों को **औक्सिटोसिन (Oxytocin)** जैसे खतरनाक हार्मोन बढ़ाने वाली सुईयाँ लगायी जाती हैं। यह औक्सिटोसिन पशु के दूध के साथ मिल कर बाहर आता है और इस दूध का सेवन करने वाले के शरीर में मिल जाता है और शरीर को कई खतरनाक बीमारियों का गंभीर मरीज बना देता है। यहाँ यह बता देना जरुरी है कि मानव शरीर में औक्सिटोसिन नामक हार्मोन कुदरती तौर पर मौजूद होता है। मगर कृत्रिम रूप में तैयार किए गये औक्सिटोसिन की अधिक मात्रा हमारी स्वास्थ्य प्रणाली पर अत्यंत घातक दुष्प्रभाव डालती है।

आजकल शहरों में कई किसान सब्जियों और फलों को जल्दी बड़ा करने के लिए उनमें ऑक्सीटोसिन की सुईयाँ चुभोते हैं। प्राकृतिक तरीके से जो सब्जियाँ और फल बड़ा होने में कई हफ़्तों का समय लेते हैं, वो इन सूईयों को लगाने के कुछ घंटो में ही बहुत बड़ा आकार ले लेते हैं। इससे किसानों को बाजारों में इन्हें जल्द बेचने की सुविधा मिल जाती है और वे मुनाफा कमाते हैं। मुनाफा कमाने के इस अंधे भागम-भाग में ग्राहकों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव की कोई परवाह नहीं की जाती। औक्सिटोसिन से होने वाले गंभीर दुष्प्रभावों की वजह से भारत सरकार ने दवाइयों के दुकानों पर इसके खुदरा बिक्री पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। बावजूद इसके आज भी यह प्रतिबंधित दवा चोरी-छुपे कई दवा की दुकानों पर आसानी से उपलब्ध है। यह दवा बहुत ही कम कीमत पर मिल जाती है और इसी कारण किसानों के लिए यह एक सस्ता विकल्प है। आजकल यह औक्सिटोसिन टैबलेट के रूप में भी बाजारों में उपलब्ध है।

शहरों में सरकारी और निजी कम्पनियों एवं डेयरी कोआपरेटिवों द्वारा बेचे जाने वाला पैकेट-बंद **स्किम्ड** या **फुल क्रीम** दूध मिलता है। अक्सर विभिन्न प्रचार माध्यमों से यह प्रचार किया जाता है कि इस दूध का सेवन स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी है। ये कंपनियाँ शहरों की रोजाना जरुरत के लाखों लीटर दूध की माँग की पूर्ती करती हैं। इन कंपनियों का सालाना मुनाफा सैंकड़ों करोड़ों रुपयों में होता है।

हालाँकि इस बात को समझना अत्यंत आवश्यक है कि शहर में दुधारू पशुओं की कमी होने पर भी यह कम्पनियाँ रोजाना लाखों लीटर दूध का उत्पादन आखिर कैसे कर लेती हैं।

इसका जवाब जानकर आपको बहुत आश्चर्य होगा कि पैकेट बंद दूध की गुणवत्ता बहुत ही खराब है।

महँगी कीमत पर मिलने वाला यह दूध वास्तव में शुद्ध जैविक दूध नहीं होता। यह दूध, पानी, मक्खन, दूध पाउडर, तेल इत्यादि से तैयार एक प्रकार का कृत्रिम दूध होता है।

आपको मेरी इस बात पर यकीन नहीं हो रहा न?

नीचे दिए गए चित्र को जरा गौर से देखिये।

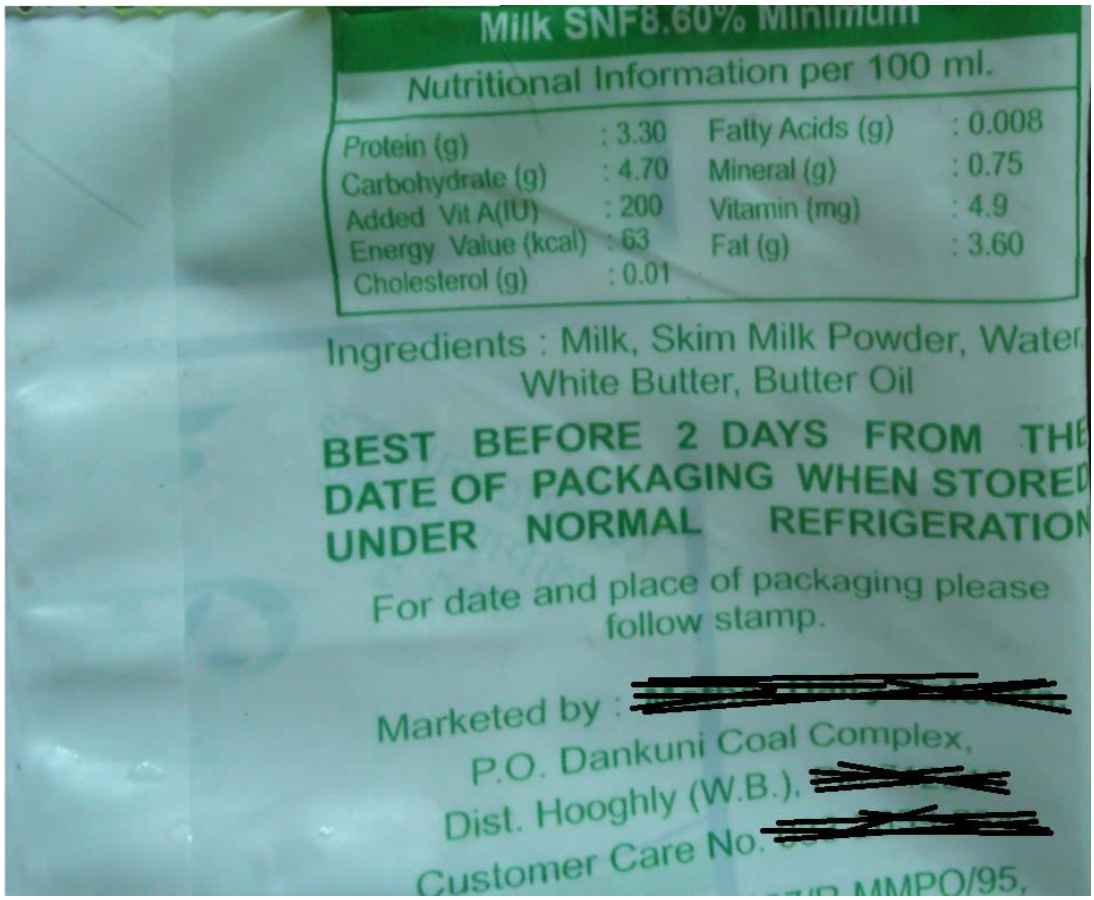

यह भारत सरकार की एक बहुत बड़े दूध उत्पादन करने वाली कंपनी के कलकत्ता शहर में रोजाना बिकने वाले दूध के पैकेट का चित्र है *(मैं कानूनी अड़चनों की वजह से इस कम्पनी का नाम छुपा रहा हूँ)*। आपको यह देखकर बहुत आश्चर्य होगा कि इस पैकेट में दूध के **घटक सामग्रियों (Ingredients)** की जानकारी दी गयी है। यहाँ यह साफ़ लिखा दिख रहा है कि इस **कृत्रिम दूध** को बनाने में **जैविक दूध** में **दूध पाउडर, पानी, सफ़ेद मक्खन** और **तेल** को मिलाया गया है।

यह देख कर मेरे मन में कुछ सवाल उठते हैं जिन्हें मैं आप के समक्ष रखना चाहता हूँ।

क्या आप वाकई में इसे शुद्ध, प्राकृतिक, जैविक दूध कहेंगे?

एक ग्राहक होने की वजह से जब आप दूध के पूरे पैसे दे कर इसे खरीद रहे हैं तो फिर आप को शुद्ध जैविक दूध से क्यों वंचित रखा जा रहा है? क्या यह आपके उपभोक्ता अधिकारों का हनन नहीं है?

यदि सरकार अपने नागरिकों को शुद्ध दूध उपलब्ध करवाने में सक्षम नहीं है तो वह शहरों में खटालों को क्यों नहीं खोलने देती? खटाल दूध का उत्पादन करने के साथ-साथ बहुत बड़े तादाद में रोजगार भी उपलब्ध करवाते हैं।

आज शहरों के बाज़ारों में उपलब्ध खाद्य पदार्थ, फल, सब्जियाँ, अनाज इत्यादि गाँव के खेतों से ही तो आते हैं। हानिकारक रासायनिक खादों और रासायनिक कीटनाशकों के इस्तेमाल से उपजे यह समस्त खेती के उत्पाद उन हानिकारक और विषैले रसायनों से प्रदूषित हो जाते हैं और इन उत्पादों का सेवन करने से ये घातक रसायन हमारे शरीर के भीतर प्रवेश कर जाते हैं और हमारे मस्तिष्क तंत्र, पाचन तंत्र, वायु तंत्र और हृदय तंत्र को क्षति पहुँचाते हैं और धीरे-धीरे हमें कई गंभीर एवं दीर्घकालिक बीमारियों का मरीज बना देते हैं। इन बीमारियों के इलाज के लिए मरीजों को हज़ारों-लाखों रुपये की दवाइयाँ खानी पड़ती हैं और सारी जिंदगी अनेक प्रकार के खान-पान के प्रतिबंधों में गुज़ार देनी पड़ती है।
इन सारी परिस्थितियों का परिणाम यह है कि एक ओर भारतीय सरकार को रासायनिक खादों के दाम को नियंत्रित रखने के लिए प्रति वर्ष हज़ारों करोड़ों रुपये की अनुवृत्ति (Subsidy) देनी पड़ती है वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य बजट पर हजारों करोड़ रुपये खर्च करना पड़ता है और सरकारी अस्पतालों को सैकड़ों करोड़ रुपये की अनुवृत्ति देनी पड़ती है। इससे सरकारी खजाने पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ बढ़ता है और यह महँगाई बढ़ने का कारण भी बनता है। यह तो कोई सामान्य अर्थशास्त्री भी बता सकता है कि आर्थिक अनुवृत्ति (Subsidy) के बूते किसी भी देश की अर्थव्यवस्था सदैव मजबूत नहीं बनी रह सकती एवं दीर्घकालिक अवधी में अनुवृत्ति के आर्थिक बोझ तले वह अर्थव्यवस्था एक न एक दिन अवश्य चरमरा कर ढह जाएगी।

गाय आधारित जैविक खेती एवं जीरो बजट कृषि से ही किसान बन सकते हैं आर्थिक सम्पन्न।

इतिहास में यह साफ़ वर्णन है कि भारतवर्ष आज से कई शताब्दियों पहले एक सर्व-सम्पन्न राष्ट्र था। भारत की आर्थिक सम्पन्नता, शैक्षणिक उन्नति, प्राकृतिक एवं खनिज सम्पदा से सारा विश्व चकित था। अतीत में भारत एक स्वस्थ और रोग-मुक्त राष्ट्र था। इसकी मुख्य वजह है अतीत में भारतीयों की गौ-आधारित वैदिक जीवनशैली एवं गौ-आधारित कृषि। लोग रोजाना देशी गाय का पौष्टिक दूध पीते थे। देशी बैलों से खेत जोतते थे। गाय के गोबर से निर्मित खाद और गोमूत्र से तैयार कीटनाशकों का खेती में प्रयोग करते थे। इससे किसानों की कृषि में लागत लगभग शुन्य होती थी। जैविक खेती से उपजा अनाज अत्यंत पौष्टिक होता था जिससे नागरिकों का स्वास्थ्य भी तंदरुस्त बना रहता था।

आज भी हमारे किसान **जैविक खेती** और **शुन्य बजट कृषि (जीरो बजट फार्मिंग)** को अपना कर अपने खेतों की मिट्टी की उर्वरकता को प्राकृतिक रूप से पुनःजीवित कर सकते हैं और अपने खेतों को फसलों से लहलहा सकते हैं। जैविक खेती में किसी भी प्रकार के रासायनिक खादों, उर्वरकों या रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। इसमें गाय के गोबर से खाद और गोमूत्र से कीटनाशक तैयार कर खेती में इस्तेमाल किया जाता है। इस खेती से उपजी फसल सम्पूर्ण रूप से जैविक (Organic) होती है जिसकी बाजार में अच्छी कीमत मिल जाती है।
आज भारतवर्ष में **सिक्किम** ऐसा राज्य है जहाँ १०० प्रतिशत (100%) जैविक खेती होती है। इसके अलावा अन्य कई राज्य जैसे **पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना, कर्नाटक, राजस्थान, महाराष्ट्र, केरल, ओडिशा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू** में वहाँ के कई किसानों ने जैविक कृषि को सम्पूर्ण रूप से अपना लिया है और खेती में बहुत कम लागत लगा कर बहुत अधिक मुनाफा कमा रहे हैं। हालांकि अभी इस दिशा में बहुत काम करना बाकी है और कृषकों को जागरूक बनाने की जरुरत है मगर मेरा यह स्पष्ट मानना है कि यह वाकई में संभव है। जरुरत है तो बस सही जानकारी और दृढ़ निश्चय की।

आगे हम जानेंगे विभिन्न प्रकार की जैविक खेती के तरीकों के बारे में।

क्या है शून्य बजट आध्यात्मिक कृषि (जीरो बजट स्पिरिचुअल फार्मिंग)?

जीरो बजट खेती यानी *"हींग लगे न फिटकरी रंग भी आए चोखा"*।
जीरो बजट फार्मिंग एक ऐसी कृषि तकनीक है जिसमें रासायनिक कीटनाशक, रासायनिक खाद और हाईब्रिड बीज इत्यादि किसी भी आधुनिक उपाय का इस्तेमाल नहीं होता है। यह खेती पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है।
इस तकनीक में किसान खेती में न्यूनतम लागत लगा कर भरपूर फसल उगाकर लाभ कमा रहे हैं, इसीलिए इसे जीरो बजट खेती का नाम दिया गया है।
इस जीरो बजट खेती के जनक महाराष्ट्र के **सुभाष पालेकर** हैं।

सुभाष पालेकर

आइये हम इस क्रांतिकारी खेती की तकनीक को संक्षिप्त में समझने का प्रयत्न करते हैं।

यह वैज्ञानिक प्रमाणिक तथ्य है कि मिट्टी में असंख्य गुणकारी सूक्ष्म जीव (Micro Organisms) होते हैं जो मिट्टी को पोषक तत्व प्रदान करते हैं। इनसे ही मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरक क्षमता का निर्माण होता है। ये सूक्ष्म जीव मिट्टी में मौजूद प्राकृतिक पोषक तत्वों को पका कर पौधों के जड़ द्वारा ग्रहण करने योग्य बनाने का काम करते हैं।

खेतों में ट्रैक्टर से जुताई करने से, रासायनिक खाद, रासायनिक उर्वरक और विषैले रासायनिक कीटनाशकों को डालने से खेतों की मिट्टी में मौजूद यह गुणकारी सूक्ष्म जीव और केंचुए तबाह और समाप्त हो जाते हैं और मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरक क्षमता समाप्त हो जाती है।

मिट्टी की इस खोयी हुई प्राकृतिक उर्वरकता तो पुनःजीवित करने के लिए जीरो बजट खेती की तकनीक के माध्यम से देशी गाय के गोबर और देशी गाय के गोमूत्र से तैयार **जीवामृत, पंचगव्य, निमास्त्र** इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।
जिस प्रकार कई लीटर दूध की हांड़ी में सिर्फ एक चम्मच दही का जोरन डालने से उसमें मौजूद सूक्ष्म जीव पूरे दूध को दही में तब्दील कर देते हैं ठीक उसी प्रकार कई एकड़ खेत की मिट्टी में मात्र थोड़ा सा **जीवामृत** डालने से मिट्टी की उपजाऊ क्षमता आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ जाती है। यकीन मानिए, इनके परिणाम देख कर आप चकित रह जायेंगे।

1 एकड़ खेत के लिए गाय का कितना गोबर चाहिए इस बात को वैज्ञानिक सटीकता से जानने के लिए सुभाष पालेकर जी ने छः वर्षों तक कई गायों और उनके गोबर और गोमूत्र की उपयोगिता पर व्यापक गहन शोध किया।
अपने शोध के पश्चात सुभाष पालेकर जी कुछ निष्कर्षों पर पहुँचे।

Thank You for previewing this eBook

You can read the full version of this eBook in different formats:

- HTML (Free /Available to everyone)
- PDF / TXT (Available to V.I.P. members. Free Standard members can access up to 5 PDF/TXT eBooks per month each month)
- Epub & Mobipocket (Exclusive to V.I.P. members)

To download this full book, simply select the format you desire below

Free-Ebooks.net